Chapter छह
महाराज परीक्षित का निधन

इस अध्याय में महाराज परीक्षित के मुक्ति-लाभ, महाराज जनमेजय द्वारा सारे सर्पों को मारने के लिए यज्ञ सम्पन्न का होना, वेदों की उत्पत्ति तथा श्रील वेदव्यास द्वारा वैदिक वाङ्मय के विभाजन का वर्णन हुआ है।

श्री शुकदेव के वचन सुनने के बाद महाराज परीक्षित ने कहा कि पुराणों के सार तथा भगवान् उत्तमश्लोक की अमृतमयी लीलाओं से ओतप्रोत *भागवत* को सुन कर, उन्होंने अभय का दिव्य पद तथा ब्रह्म से एकात्म प्राप्त कर लिया है। उनका अज्ञान दूर हो चुका है और श्री शुकदेव की कृपा से उन्होंने ईश्वर के परम शुभ साकार रूप, भगवान् हरि का दर्शन प्राप्त कर लिया है। फलस्वरूप उनका सारा मृत्यु-भय दूर हो चुका है। तत्पश्चात् श्री परीक्षित महाराज ने शुकदेव गोस्वामी से प्रार्थना की कि वे उन्हें अपना हृदय भगवान् हरि के चरणकमलों में स्थिर करने की और अपना प्राण छोड़ने की अनुमति दें। यह अनुमति देकर श्री शुकदेव उठ कर चले गये। तत्पश्चात् समस्त

संशयों से मुक्त महाराज परीक्षित योगिक आसन में बैठ गये और परमात्मा के ध्यान में लीन हो गये। तब ब्राह्मण-वेश में आकर तक्षक ने उन्हें काट लिया और सन्त स्वभाव वाले राजा का शरीर तुरन्त जल कर क्षार हो गया।

जब परीक्षित-पुत्र जन्मेजय को अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला तो वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने सारे सर्पों को विनष्ट करने के उद्देश्य से यज्ञ करना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि तक्षक को इन्द्र का संरक्षण प्राप्त था, तो भी वह मंत्रों द्वारा आकृष्ट हो गया और अग्नि में गिरने ही वाला था। यह देख कर अंगिरा ऋषि के पुत्र बृहस्पति वहाँ आये और महाराज जनमेजय को सलाह दी कि तक्षक को इसलिए नहीं मारा जा सकता क्योंकि उसने देवताओं का अमृतपान किया है। इसके अतिरिक्त, अंगिरा ने कहा कि सभी जीवों को अपने किए कर्मों का फल भोगना ही है। इसलिए राजा को इस यज्ञ का त्याग कर देना चाहिए। जनमेजय को बृहस्पति के शब्दों पर विश्वास हो गया अत: उसने अपना यज्ञ रोक दिया।

तत्पश्चात् श्री रौनक द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर, सूत गोस्वामी ने वेदों का विभाजन कह सुनाया। सर्वश्रेष्ठ देवता ब्रह्मा के मुख से सूक्ष्म दिव्य ध्वनि निकली और इस दिव्य ध्वनि से ॐ अक्षर निकला जो अत्यन्त शक्तिवान तथा आत्म-प्रकाशित था। इस ॐकार के द्वारा ब्रह्मा ने आदि वेदों की सृष्टि की और मरीचि तथा अन्य पुत्रों को, जो ब्राह्मण जाति के साधु स्वभाव वाले अग्रणी थे, उनकी शिक्षा दी। यह वैदिक ज्ञान राशि गुरु-परम्परा द्वारा द्वापर युग के अन्त तक हस्तान्तरित होती आई जब व्यासदेव ने इसे चार भागों में विभक्त करके चार संहिताओं के रूप में मुनियों के विविध सम्प्रदायों को उनका उपदेश दिया। जब याज्ञवल्क्य मुनि के गुरु ने उन्हें बहिष्कृत किया, तो उन्हें उनसे प्राप्त सारे वैदिक मंत्रों का त्याग करना पड़ा। उन्होंने यजुर्वेद के नवीन मंत्रों की प्राप्ति के लिए सूर्यदेव के रूप में भगवान् की पूजा की। तत्पश्चात् श्री सूर्य देव ने उनकी प्रार्थना पूरी की।

सूत उवाच
एतन्निशम्य मुनिनाभिहितं परीक्षिद्
व्यासात्मजेन निखिलात्मदृशा समेन ।
तत्पादमूलमुपसृत्य नतेन मूर्ध्ना
बद्धाञ्जलिस्तमिदमाह स विष्णुरात: ॥ १ ॥

शब्दार्थ

सूत: उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; एतत्—यह; निशम्य—सुन कर; मुनिना—मुनि (शुकदेव) द्वारा; अभिहितम्—कहा गया; परीक्षित्—महाराज परीक्षित; व्यास-आत्म-जेन—व्यासदेव के पुत्र द्वारा; निखिल—सारे जीवों के; आत्म—परमेश्वर; दृशा—द्रष्टा; समेन—पूर्णतया सन्तुलित; तत्—उस (शुकदेव) का; पाद-मूलम्—चरणकमलों तक; उपसृत्य—पहुँच कर; नतेन—झुके हुए; मूर्ध्ना—सिर से; बद्ध-अञ्जलि:—हाथ जोड़े; तम्—उससे; इदम्—यह; आह—कहा; स:—वह; विष्णु-रात:—गर्भ में ही कृष्ण द्वारा रक्षा किया गया परीक्षित।.

सूत गोस्वामी ने कहा : व्यासदेव के पुत्र, स्वरूपसिद्ध तथा समदृष्टि वाले शुकदेव गोस्वामी द्वारा जो कुछ कहा गया था उसे सुन कर महाराज परीक्षित नम्रतापूर्वक उनके

चरणकमलों के पास गये। मुनि के चरणों पर अपना शीश झुकाते हुए, सम्मान में हाथ जोड़े, जीवन-भर भगवान् विष्णु के संरक्षण में रह चुके राजा ने इस प्रकार कहा।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार जब शुकदेव राजा परीक्षित को उपदेश दे रहे थे तो वहाँ पर उपस्थित मुनियों में से कुछ निर्विशेषवादी दार्शनिक थे। *समेत* शब्द सूचित करता है कि पिछले अध्याय में शुकदेव गोस्वामी ने आत्म-साक्षात्कार के दर्शन के विषय में जिस प्रकार से कहा था, वह ऐसे बुद्धिजीवी योगियों को रुचिकर लगा था।

राजोवाच

सिद्धोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवता करुणात्मना ।
श्रावितो यच्च मे साक्षादनादिनिधनो हरिः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

राजा उवाच—राजा परीक्षित ने कहा; सिद्धः—पूरी तरह सफल; अस्मि—हूँ; अनुगृहीतः—महती कृपा प्रदर्शित; अस्मि—मैं हूँ; भवता—आपके द्वारा; करुणा-आत्मना—दयालु; श्रावितः—सुनाया गया; यत्—क्योंकि; च—तथा; मे—मुझको; साक्षात्—प्रत्यक्ष; अनादि—आदि से रहित; निधनः—अथवा अन्त; हरिः—भगवान्।

महाराज परीक्षित ने कहा : अब मुझे अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त हो गया है क्योंकि आप सरीखे महान् तथा दयालु आत्मा ने मुझ पर इतनी कृपा प्रदर्शित की है। आपने स्वयं मुझसे आदि अथवा अन्त से रहित भगवान् हरि की यह कथा कही है।

नात्यद्भुतमहं मन्ये महतामच्युतात्मनाम् ।
अज्ञेषु तापतप्तेषु भूतेषु यदनुग्रहः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अति-अद्भुतम्—अत्यन्त आश्चर्यजनक; अहम्—मैं; मन्ये—सोचता हूँ; महताम्—महापुरुषों के लिए; अच्युत-आत्मनाम्—जिनके मन सदैव भगवान् कृष्ण में लीन रहते हैं; अज्ञेषु—अज्ञानी पर; ताप—भौतिक जीवन के कष्टों से; तप्तेषु—सताये हुए; भूतेषु—बद्धात्माओं पर; यत्—जो; अनुग्रहः—दया।

मैं इसे तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं मानता कि आप जैसे महात्मा, जिनके मन सदैव अच्युत भगवान् में लीन रहते हैं, हम जैसे मूर्ख बद्धजीवों पर दया दिखाते हैं, जो भौतिक जीवन की समस्याओं से सताये होते हैं।

पुराणसंहितामेतामश्रौष्म भवतो वयम् ।
यस्यां खलूत्तमःश्लोको भगवाननवर्ण्यते ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

पुराण-संहिताम्—सारे पुराणों का आवश्यक सारांश; एताम्—इस; अश्रौष्म—सुना है; भवतः—आपसे; वयम्—हमने; यस्याम्—जिसमें; खलु—निस्सन्देह; उत्तमः-श्लोकः—उत्तम श्लोकों द्वारा वर्णित; भगवान्—भगवान्; अनुवर्ण्यते—उचित रीति से वर्णन किया जाता है।

मैंने आपसे यह *श्रीमद्भागवत* का श्रवण किया है, जो सारे पुराणों का पूर्ण सार है और

जो भगवान् उत्तमश्लोक का ठीक से वर्णन करता है।

भगवंस्तक्षकादिभ्यो मृत्युभ्यो न बिभेम्यहम् ।
प्रविष्टो ब्रह्म निर्वाणमभयं दर्शितं त्वया ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

भगवन्—हे प्रभु; तक्षक—तक्षक सर्प से; आदिभ्यः—अथवा अन्य जीवों से; मृत्युभ्यः—बारम्बार मृत्यु से; न बिभेमि—नहीं डरता हूँ; अहम्—मैं; प्रविष्टः—प्रवेश करके; ब्रह्म—परब्रह्म; निर्वाणम्—हर भौतिक वस्तु से परे; अभयम्—निर्भीकता; दर्शितम्—दिखाई गई; त्वया—आपके द्वारा।

हे प्रभु, अब मुझे तक्षक या अन्य जीव का या बारम्बार मृत्यु का भी भय नहीं रहा क्योंकि मैंने अपने को उस विशुद्ध आध्यात्मिक परब्रह्म में लीन कर दिया है, जिसका उद्घाटन आपने किया है और जो सारे भय को नष्ट कर देता है।

अनुजानीहि मां ब्रह्मन्वाचं यच्छाम्यधोक्षजे ।
मुक्तकामाशयं चेतः प्रवेश्य विसृजाम्यसून् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

अनुजानीहि—अनुमति दें; माम्—मुझको; ब्रह्मन्—हे महान् ब्राह्मण; वाचम्—मेरी वाणी (तथा अन्य इन्द्रिय-कार्य); यच्छामि—मैं रखूँगा; अधोक्षजे—भगवान् में; मुक्त—त्याग करके; काम-आशयम्—सारी कामुक इच्छाएँ; चेतः—अपना मन; प्रवेश्य—लीन करके; विसृजामि—मैं त्याग दूँगा; असून्—अपना प्राण।

हे ब्राह्मण, मुझे अनुमति दें कि मैं अपनी वाणी तथा अपनी अन्य इन्द्रियों के कार्यों को बन्द करके भगवान् अधोक्षज को सौंप सकूँ। कृपया मुझे अनुमति दें कि मैं अपने मन को विषय-वासनाओं से शुद्ध करके उन्हीं में लीन कर सकूँ और इस तरह अपना जीवन त्याग सकूँ।

तात्पर्य : शुकदेव गोस्वामी ने राजा परीक्षित से पूछा, ''अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?'' इस पर राजा ने उत्तर दिया कि वे श्रीमद्भागवत के सन्देश को पूरी तरह समझ चुके हैं और बिना किसी हिचक के भगवद्धाम जाने के लिए तैयार हैं।

अज्ञानं च निरस्तं मे ज्ञानविज्ञाननिष्ठया ।
भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

अज्ञानम्—अज्ञान; च—भी; निरस्तम्—जड़मूल नष्ट हुआ; मे—मेरा; ज्ञान—परमेश्वर के ज्ञान; विज्ञान—तथा उनके ऐश्वर्य तथा माधुर्य की प्रत्यक्ष अनुभूति; निष्ठया—स्थिर होकर; भवता—आपके द्वारा; दर्शितम्—दिखाया गया; क्षेमम्—सर्व-कल्याण; परम्—परम; भगवतः—भगवान् का; पदम्—पद।

आपने भगवान् के परम मंगलमय साकार रूप का साक्षात्कार कराया है। अब मैं ज्ञान तथा आत्म-साक्षात्कार में स्थिर हूँ और मेरा अज्ञान मिट चुका है।

सूत उवाच
इत्युक्तस्तमनुज्ञाप्य भगवान्बादरायणिः ।
जगाम भिक्षुभिः साकं नरदेवेन पूजितः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—श्री सूत गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; उक्तः—कहा गया; तम्—उससे; अनुज्ञाप्य—अनुमति देकर; भगवान्—शक्तिमान सन्त; बादरायणिः—बादरायण वेदव्यास के पुत्र शुकदेव; जगाम—चले गये; भिक्षुभिः—विरक्त मुनियों के; साकम्—साथ; नर-देवेन—राजा द्वारा; पूजितः—पूजा किया गया।

सूत गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार अनुनय-विनय किये जाने पर श्रील व्यासदेव के पुत्र ने राजा परीक्षित को अनुमति दे दी। तत्पश्चात् राजा तथा वहाँ पर उपस्थित मुनियों द्वारा पूजित होकर शुकदेव उस स्थान से चले गये।

परीक्षिदपि राजर्षिरात्मन्यात्मानमात्मना ।
समाधाय परं दध्यावस्पन्दासुर्यथा तरुः ॥ ९ ॥
प्राक्कूले बर्हिष्यासीनो गङ्गाकूल उदङ्मुखः ।
ब्रह्मभूतो महायोगी निःसङ्गश्छिन्नसंशयः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

परीक्षित्—महाराज परीक्षित; अपि—आगे भी; राज-ऋषिः—सन्त स्वभाव वाला महान् राजा; आत्मनि—अपनी आध्यात्मिक पहचान के ही भीतर; आत्मानम्—अपने मन को; आत्मना—अपनी बुद्धि से; समाधाय—रख कर; परम्—परम में; दध्यौ—ध्यान किया; अस्पन्द—गतिहीन; असुः—अपना प्राण; यथा—जिस तरह; तरुः—वृक्ष; प्राक्-कूले—पूर्व दिशा की ओर सिरे किये; बर्हिषि—दर्भ घास पर; आसीनः—बैठे हुए; गङ्गा-कूले—गंगा के तट पर; उदक्-मुखः—उत्तर की ओर मुँह करके; ब्रह्म-भूतः—अपनी असली पहचान का पूर्ण साक्षात्कार करते हुए; महा-योगी—उच्च योगी; निःसङ्गः—समस्त भौतिक आसक्ति से मुक्त; छिन्न—तोड़ कर; संशयः—सारे सन्देह।

तब महाराज परीक्षित पूर्वाभिमुख दर्भ के बने आसन पर गंगा नदी के तट पर बैठ गये और स्वयं उत्तर की ओर मुख कर लिया। योगसिद्धि प्राप्त करने के बाद उन्हें पूर्ण आत्म-साक्षात्कार की अनुभूति हुई और वे समस्त भौतिक आसक्ति तथा संशय से मुक्त थे। साधु राजा ने अपनी शुद्ध बुद्धि से अपने मन को अपने आत्मा के भीतर स्थिर कर लिया और परब्रह्म का ध्यान करने लगे। उनकी प्राणवायु ने गति करनी बन्द कर दी और वे वृक्ष की तरह जड़ हो गये।

तक्षकः प्रहितो विप्राः क्रुद्धेन द्विजसूनुना ।
हन्तुकामो नृपं गच्छन्ददर्श पथि कश्यपम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तक्षकः—तक्षक; प्रहितः—भेजा गया; विप्राः—हे विद्वान ब्राह्मणो; क्रुद्धेन—क्रुद्ध हुए; द्विज—शमीक मुनि के; सूनुना—पुत्र द्वारा; हन्तु-कामः—मारने की इच्छा से; नृपम्—राजा के पास; गच्छन्—जाते हुए; ददर्श—देखा; पथि—रास्ते में; कश्यपम्—कश्यप मुनि।

हे विद्वान ब्राह्मणो, ब्राह्मण के क्रुद्ध पुत्र द्वारा भेजा गया तक्षक सर्प राजा को मारने के

लिए उसकी ओर जा रहा था कि उसने मार्ग में कश्यप मुनि को देखा।

तं तर्पयित्वा द्रविणैर्निवर्त्य विषहारिणम् ।
द्विजरूपप्रतिच्छन्नः कामरूपोऽदशन्नृपम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस (कश्यप) को; तर्पयित्वा—तुष्ट करके; द्रविणैः—बहुमूल्य भेंटों द्वारा; निवर्त्य—रोक कर; विष-हारिणम्—विष उतारने में दक्ष; द्विज-रूप—ब्राह्मण के रूप में; प्रतिच्छन्नः—वेश बदल कर; काम-रूपः—इच्छानुसार कोई भी रूप धारण करने में समर्थ तक्षक ने; अदशत्—काट लिया; नृपम्—राजा परीक्षित को।

तक्षक ने कश्यप मुनि को, जोकि विष उतारने में दक्ष थे, बहुमूल्य भेंटे देकर महाराज परीक्षित की रक्षा करने से रोक दिया। तब इच्छानुसार रूप धारण करने वाला तक्षक, जोकि ब्राह्मण के वेश में था, राजा के निकट गया और उसे काट लिया।

तात्पर्य : कश्यप मुनि तक्षक के विष को उतार सकते थे क्योंकि उन्होंने तक्षक के जहरीले दाँतों द्वारा काटे हुए तथा जल कर क्षार हुए ताड़ वृक्ष को जीवित करके अपनी इस शक्ति को प्रदर्शित कर दिया हुआ था। भाग्य के विधान के अनुसार कश्यप मुनि तक्षक द्वारा बहका दिये गये और वही हुआ जो होना था।

ब्रह्मभूतस्य राजर्षेर्देहोऽहिगरलाग्निना ।
बभूव भस्मसात्सद्यः पश्यतां सर्वदेहिनाम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्म-भूतस्य—पूर्णतया स्वरूपसिद्ध; राज-ऋषेः—राजर्षि के; देहः—शरीर; अहि—सर्प के; गरल—विष से; अग्निना—अग्नि से; बभूव—हो गया; भस्म-सात्—राख; सद्यः—तुरन्त; पश्यताम्—देखते-देखते; सर्व-देहिनाम्—सभी देहधारी जीवों के।

ब्रह्माण्ड-भर के जीवों के देखते-देखते उस स्वरूपसिद्ध राजर्षि का शरीर सर्प-विष की अग्नि से तुरन्त जल कर राख हो गया।

हाहाकारो महानासीद्भुवि खे दिक्षु सर्वतः ।
विस्मिता ह्यभवन्सर्वे देवासुरनरादयः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

हाहा-कारः—शोक का क्रन्दन; महान्—अत्यधिक; आसीत्—हुआ; भुवि—पृथ्वी पर; खे—आकाश में; दिक्षु—दिशाओं में; सर्वतः—चारों ओर; विस्मिताः—चकित; हि—निस्सन्देह; अभवन्—हो गये; सर्वे—सभी; देव—देवता; असुर—असुरगण; नर—मनुष्य; आदयः—तथा अन्य प्राणी।

पृथ्वी पर तथा स्वर्ग में सभी दिशाओं में भीषण हाहाकार होने लगा और सारे देवता, असुर, मनुष्य तथा अन्य प्राणी चकित हो उठे।

देवदुन्दुभयो नेदुर्गन्धर्वाप्सरसो जगुः ।

ववृषुः पुष्पवर्षाणि विबुधाः साधुवादिनः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

देव—देवताओं की; दुन्दुभयः—दुन्दुभियाँ; नेदुः—बजने लगीं; गन्धर्व-अप्सरसः—गन्धर्वों तथा अप्सराओं ने; जगुः—गाया; ववृषुः—वर्षा की; पुष्प-वर्षाणि—फूलों की वर्षा; विबुधाः—देवताओं ने; साधु-वादिनः—प्रशंसा करते हुए।

देव-लोक में दुन्दुभियाँ बजने लगीं और स्वर्ग के गन्धर्वों तथा अप्सराओं ने गीत गाये। देवताओं ने फूलों की वर्षा की तथा प्रशंसात्मक शब्द कहे।

तात्पर्य : यद्यपि सारे विद्वान पुरुष जिसमें देवता सम्मिलित थे, पहले शोक मना रहे थे, किन्तु उन्हें शीघ्र ही अनुभव हुआ कि एक महान् आत्मा भगवद्धाम वापस चला गया है। यह तो वास्तव में उल्लास का कारण था।

जन्मेजयः स्वपितरं श्रुत्वा तक्षकभक्षितम् ।
यथाजुहाव सन्क्रुद्धो नागान्सत्रे सह द्विजैः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

जन्मेजयः—परीक्षित पुत्र जनमेजय; स्व-पितरम्—अपने पिता को; श्रुत्वा—सुन कर; तक्षक—तक्षक द्वारा; भक्षितम्—डसा गया; यथा—उचित रीति से; आजुहाव—हवन करने लगा; सङ्क्रुद्धः—अत्यन्त क्रुद्ध; नागान्—सर्पों को; सत्रे—महान् यज्ञ में; सह—सहित; द्विजैः—ब्राह्मणों।

यह सुन कर कि उसके पिता को तक्षक ने बुरी तरह से डस कर मार दिया है, महाराज जनमेजय अत्यधिक क्रुद्ध हुए और ब्राह्मणों से एक विशाल यज्ञ कराया जिसमें उन्होंने संसार के सारे सर्पों को यज्ञ-अग्नि में भेंट कर दिया।

सर्पसत्रे समिद्धाग्नौ दह्यमानान्महोरगान् ।
दृष्ट्वेन्द्रं भयसंविग्नस्तक्षकः शरणं ययौ ॥ १७॥

शब्दार्थ

सर्प-सत्रे—सर्प-यज्ञ में; समिद्ध—प्रज्ज्वलित; अग्नौ—आग में; दह्यमानान्—जलाये जाते हुए; महा-उरगान्—विशाल सर्पों को; दृष्ट्वा—देख कर; इन्द्रम्—इन्द्र के पास; भय संविग्नः—अत्यधिक विचलित; तक्षकः—तक्षक; शरणम्—शरण के लिए; ययौ—गया।

जब तक्षक ने अत्यन्त शक्तिशाली सर्पों को भी उस सर्प-यज्ञ की प्रज्ज्वलित अग्नि में जलाया जाते देखा, तो वह भय से आकुल हो उठा और शरण के लिए इन्द्र के पास पहुँचा।

अपश्यंस्तक्षकं तत्र राजा पारीक्षितो द्विजान् ।
उवाच तक्षकः कस्मान्न दह्येतोरगाधमः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

अपश्यन्—न देखते हुए; तक्षकम्—तक्षक को; तत्र—वहाँ; राजा—राजा; पारीक्षितः—जनमेजय; द्विजान्—ब्राह्मणों से; उवाच—कहा; तक्षकः—तक्षक; कस्मात्—क्यों; न दह्येत—नहीं जला; उरग—समस्तसर्पों में; अधमः—नीच।

जब राजा जनमेजय ने तक्षक को यज्ञ-अग्नि में प्रवेश करते नहीं देखा तो उन्होंने

ब्राह्मणों से कहा, ''समस्त सर्पों में नीच वह तक्षक इस अग्नि में क्यों नहीं जल रहा?''

तं गोपायति राजेन्द्र शक्रः शरणमागतम् ।
तेन संस्तम्भितः सर्पस्तस्मान्नाग्नौ पतत्यसौ ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस (तक्षक) को; गोपायति—छिपाये है; राज-इन्द्र—हे राजाओं में श्रेष्ठ; शक्रः—इन्द्र; शरणम्—शरण के लिए; आगतम्—आया हुआ; तेन—उस इन्द्र द्वारा; संस्तम्भितः—रखा गया; सर्पः—सर्प; तस्मात्—इस तरह; न—नहीं; अग्नौ—अग्नि में; पतति—गिरता है; असौ—वह।

ब्राह्मणों ने उत्तर दिया : ''हे राजेन्द्र, तक्षक सर्प इसलिए अग्नि में नहीं गिरा क्योंकि इन्द्र द्वारा उसकी रक्षा हो रही है, जिसके पास वह शरण के लिए पहुँचा है। इन्द्र उसे अग्नि से बचाये हुए है।

पारीक्षित इति श्रुत्वा प्राहर्त्विज उदारधीः ।
सहेन्द्रस्तक्षको विप्रा नाग्नौ किमिति पात्यते ॥ २० ॥

शब्दार्थ

पारीक्षितः—राजा जनमेजय ने; इति—ये वचन; श्रुत्वा—सुन कर; प्राह—उत्तर दिया; ऋत्विजः—पुरोहितों से; उदार—विशाल; धीः—बुद्धि वाले; सह—साथ; इन्द्रः—इन्द्र; तक्षकः—तक्षक; विप्राः—हे ब्राह्मणो; न—नहीं; अग्नौ—आग में; किम्—क्यों; इति—निस्सन्देह; पात्यते—गिराया जाता है।

इन शब्दों को सुन कर बुद्धिमान राजा जनमेजय ने पुरोहितों से कहा, ''तो हे ब्राह्मणो, तुम लोग तक्षक को, उसके रक्षक इन्द्र सहित, अग्नि में क्यों नहीं गिरा लेते?''

तच्छ्रुत्वाजुहुवुर्विप्राः सहेन्द्रं तक्षकं मखे ।
तक्षकाशु पतस्वेह सहेन्द्रेण मरुत्वता ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; श्रुत्वा—सुन कर; आजुहुवुः—हवन किया; विप्राः—ब्राह्मण पुरोहितों ने; सह—सहित; इन्द्रम्—इन्द्र; तक्षकम्—तक्षक को; मखे—यज्ञ-अग्नि में; तक्षक—हे तक्षक; आशु—तुरन्त; पतस्व—गिरो; इह—यहाँ; सह इन्द्रेण—इन्द्र समेत; मरुत्-वता—सारे देवताओं के साथ।

यह सुन कर पुरोहितों ने इन्द्र समेत तक्षक को यज्ञ-अग्नि में आहुति के रूप अर्पित करने के लिए यह मंत्र पढ़ा, ''हे तक्षक, तुम इस अग्नि में इन्द्र तथा उनके देवताओं के समूह सहित तुरन्त गिर पड़ो।''

इति ब्रह्मोदिताक्षेपैः स्थानादिन्द्रः प्रचालितः ।
बभूव सम्भ्रान्तमतिः सविमानः सतक्षकः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; ब्रह्म—ब्राह्मणों द्वारा; उदित—कहे गये; आक्षेपैः—अपमानजनक शब्दों द्वारा; स्थानात्—अपने स्थान से; इन्द्रः—इन्द्र; प्रचालितः—फेंका गया; बभूव—हो गया; सम्भ्रान्त—विचलित; मतिः—अपने मन में; स-विमानः—अपने स्वर्गिक विमान सहित; स-तक्षकः—तक्षक समेत।

जब ब्राह्मणों के इन अपमानजनक शब्दों के कारण इन्द्र अपने विमान तथा तक्षक समेत सहसा अपने स्थान से च्युत होने लगा, तो वह अत्यन्त घबड़ा गया।

तं पतन्तं विमानेन सहतक्षकमम्बरात् ।
विलोक्याङ्गिरसः प्राह राजानं तं बृहस्पतिः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; पतन्तम्—गिरता हुआ; विमानेन—अपने विमान से; सह-तक्षकम्—तक्षक समेत; अम्बरात्—आकाश से; विलोक्य—देख कर; आङ्गिरसः—अंगिरा पुत्र; प्राह—बोला; राजानम्—राजा (जनमेजय) से; तम्—उस; बृहस्पतिः—बृहस्पति।

जब अंगिरा मुनि के पुत्र बृहस्पति ने इन्द्र को तक्षक समेत आकाश से उसके विमान से गिरते देखा तो वह राजा जनमेजय के पास पहुँचा और उनसे इस प्रकार कहा।

नैष त्वया मनुष्येन्द्र वधमर्हति सर्पराट् ।
अनेन पीतममृतमथ वा अजरामरः ॥ २४॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एषः—यह तक्षक; त्वया—तुम्हारे द्वारा; मनुष्य-इन्द्र—हे मनुष्यों के शासक; वधम्—हत्या के; अर्हति—योग्य है; सर्प-राट्—सर्पों का राजा; अनेन—उसके द्वारा; पीतम्—पिये हुए; अमृतम्—देवताओं का अमृत; अथ—इसलिए; वै—अथवा; अजर—बुढ़ापे के प्रभावों से मुक्त; अमरः—एक तरह से अमर।

''हे पुरुषों में राजा, यह उचित नहीं है कि यह सर्पराज आपके हाथों से मौत को प्राप्त हो क्योंकि इसने अमर देवताओं का अमृत पी रखा है। फलस्वरूप, इसे बुढ़ापा तथा मृत्यु के सामान्य लक्षण नहीं सताते।''

जीवितं मरणं जन्तोर्गतिः स्वेनैव कर्मणा ।
राजंस्ततोऽन्यो नास्त्यस्य प्रदाता सुखदुःखयोः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

जीवितम्—जीवित; मरणम्—मर रहे; जन्तोः—जीव का; गतिः—अगले जीवन में गन्तव्य; स्वेन—अपने ही द्वारा; एव—एकमात्र; कर्मणा—कर्म द्वारा; राजन्—हे राजा; ततः—उसकी अपेक्षा; अन्यः—दूसरा; न अस्ति—नहीं है; अस्य—उसका; प्रदाता—देने वाला; सुख-दुःखयोः—सुख तथा दुख का।

''देहधारी आत्मा का जीवन तथा मरण और अगले जीवन में उसका गन्तव्य—ये सभी उसके ही अपने कर्म द्वारा उत्पन्न होते हैं। इसलिए हे राजन्, किसी के सुख तथा दुख को उत्पन्न करने के लिए वास्तव में कोई अन्य अभिकर्ता उत्तरदायी नहीं है।''

तात्पर्य : यद्यपि राजा परीक्षित तक्षक के काटने से मरे, किन्तु उन्हें भगवद्धाम लाने वाले स्वयं

भगवान् कृष्ण थे। बृहस्पति चाह रहे थे कि तरुण राजा जनमेजय इन बातों को आध्यात्मिक दृष्टि से देखे।

सर्पचौराग्निविद्युद्भ्यः क्षुत्तृद्व्याध्यादिभिर्नृप ।
पञ्चत्वमृच्छते जन्तुर्भुङ्क्ते आरब्धकर्म तत् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सर्प—सर्पों; चौर—चोरों; अग्नि—आग; विद्युद्भ्यः—तथा आसमान की बिजली से; क्षुत्—भूख; तृद्—प्यास; व्याधि—रोग; आदिभिः—आदि अन्य कारणों से; नृप—हे राजा; पञ्चत्वम्—मृत्यु; ऋच्छते—प्राप्त करता है; जन्तुः—बद्धजीव; भुङ्क्ते—भोग करता है; आरब्ध—विगत कर्म से पहले से उत्पन्न; कर्म—सकाम कर्मफल; तत्—वह।

''जब बद्धजीव सर्पों, चोरों, अग्नि, बिजली, भूख, रोग या अन्य किसी कारण से मारा जाता है, तो वह अपने ही विगत कर्म के फल का अनुभव करता है।''

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार, राजा परीक्षित अपने विगत कर्म का फल नहीं भोग रहे थे। महान् भक्त होने के कारण वे स्वयं भगवान् द्वारा भगवद्धाम ले जाये गये थे।

तस्मात्सत्रमिदं राजन्संस्थीयेताभिचारिकम् ।
सर्पा अनागसो दग्धा जनैर्दिष्टं हि भुज्यते ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; सत्रम्—यज्ञ को; इदम्—इस; राजन्—हे राजा; संस्थीयेत—रोका जाना चाहिए; आभिचारिकम्—हानि पहुँचाने की मंशा से किया गया; सर्पाः—सर्प; अनागसः—निर्दोष; दग्धाः—जलाया गया; जनैः—व्यक्तियों द्वारा; दिष्टम्—भाग्य; हि—निस्सन्देह; भुज्यते—भोगा जाता है।

''इसलिए हे राजा, इस यज्ञ को जो अन्यों को हानि पहुँचाने की मंशा से चालू किया गया है, बन्द करा दें। अनेक निर्दोष सर्प पहले ही जला कर मार दिये गये हैं। निस्सन्देह सारे व्यक्तियों को अपने विगत कर्मों के अदृष्ट परिणामों को भोगना चाहिए।''

तात्पर्य : यहाँ पर बृहस्पति स्वीकार करते हैं कि यद्यपि सर्प निर्दोष प्रतीत हो रहे थे किन्तु भगवान् की व्यवस्था के द्वारा वे अपने पूर्व दूषित कर्मों के लिए दण्डित भी हो रहे थे।

सूत उवाच
इत्युक्तः स तथेत्याह महर्षेर्मानयन्वचः ।
सर्पसत्रादुपरतः पूजयामास वाक्पतिम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; उक्तः—कहा गया; सः—उसने (जनमेजय ने); तथा इति—तथास्तु; आह—कहा; महा-ऋषेः—महर्षियों के; मानयन्—सम्मान करते हुए; वचः—शब्द; सर्प-सत्रात्—सर्प-यज्ञ से; उपरतः—बन्द करते हुए; पूजयाम् आस—पूजा की; वाक्-पतिम्—वाणी के स्वामी बृहस्पति को।

सूत गोस्वामी ने कहा : इस तरह सलाह दिये जाने पर महाराज जनमेजय ने उत्तर दिया, ''तथास्तु''। महर्षि के वचनों का आदर करते हुए उन्होंने सर्प-यज्ञ बन्द करा दिया और फिर

अत्यन्त वाक्पटु मुनि बृहस्पति की पूजा की।

सैषा विष्णोर्महामायाबाध्ययालक्षणा यया ।
मुह्यन्त्यस्यैवात्मभूता भूतेषु गुणवृत्तिभिः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

सा एषा—यही; विष्णोः—भगवान् विष्णु की; महा-माया—मोहमयी भौतिक शक्ति; अबाध्यया—जो उसके द्वारा जिसे रोका नहीं जा सकता; अलक्षणा—न दिखने वाली; यया—जिसके द्वारा; मुह्यन्ति—विमोहित हो जाते हैं; अस्य—भगवान् का; एव—निस्सन्देह; आत्म-भूताः—अंश रूप आत्माएँ; भूतेषु—उनके भौतिक शरीरों में; गुण—प्रकृति के गुणों के; वृत्तिभिः—कार्यों द्वारा।

यह निस्सन्देह भगवान् विष्णु की मायाशक्ति है, जो अबाध्य है और जिसे देख पाना कठिन है। यद्यपि व्यष्टि आत्माएँ भगवान् की भिन्नांश हैं, किन्तु इस मायाशक्ति के प्रभाव से, वे विविध भौतिक शरीरों के साथ अपनी पहचान से विमोहित हैं।

तात्पर्य : भगवान् विष्णु की मायाशक्ति इतनी प्रबल है कि राजा परीक्षित का लब्धप्रतिष्ठ पुत्र तक अस्थायी रूप से दिशाभ्राँत हो गया। किन्तु भगवान् कृष्ण का भक्त होने से उसका मोह तुरन्त ठीक हो गया। दूसरी ओर एक सामान्य भौतिकतावादी पुरुष भगवान् के विशेष संरक्षण के बिना भौतिक अज्ञान में डूबा रहता है। वस्तुतः भौतिकतावादी व्यक्तियों को भगवान् विष्णु के संरक्षण की आवश्यकता नहीं रहती। इसलिए उनका पूर्ण विनाश अपरिहार्य है।

न यत्र दम्भीत्यभया विराजिता
मायात्मवादेऽसकृदात्मवादिभिः ।
न यद्विवादो विविधस्तदाश्रयो
मनश्च सङ्कल्पविकल्पवृत्ति यत् ॥ ३० ॥
न यत्र सृज्यं सृजतोभयोः परं
श्रेयश्च जीवस्त्रिभिरन्वितस्त्वहम् ।
तदेतदुत्सादितबाध्यबाधकं
निषिध्य चोर्मीन्विरमेत तन्मुनिः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; यत्र—जिसमें; दम्भी—दिखावटी व्यक्ति; इति—इस प्रकार सोचते हुए; अभया—निडर; विराजिता—दृश्य; माया—मायाशक्ति; आत्म-वादे—आध्यात्मिक पूछताछ किये जाने पर; असकृत्—निरन्तर; आत्म-वादिभिः—अध्यात्म विद्या का वर्णन करने वालों द्वारा; न—नहीं; यत्—जिसमें; विवादः—भौतिकतावादी तर्क-वितर्क; विविधः—नाना प्रकार का; तत्-आश्रयः—उस माया पर आश्रित; मनः—मन; च—तथा; सङ्कल्प—निर्णय; विकल्प—तथा संशय; वृत्ति—जिनके कार्य; यत्—जिसमें; न—नहीं; यत्र—जिसमें; सृज्यम्—भौतिक जगत की सृजित वस्तुएँ; सृजता—उनके कारणों समेत; उभयोः—दोनों के द्वारा; परम्—प्राप्त किया हुआ; श्रेयः—लाभ; च—तथा; जीवः—जीव; त्रिभिः—तीन (गुणों) से; अन्वितः—युक्त; तु—निस्सन्देह; अहम्—मिथ्या अहंकार (से बद्ध); तत् एतत्—वह निस्सन्देह; उत्सादित—के अतिरिक्त; बाध्य—रोका गया (बद्धजीव); बाधकम्—तथा रोकने वाला (गुण); निषिध्य—छोड़ते हुए; च—तथा; ऊर्मीन्—लहरों को (मिथ्या अहंकार आदि को); विरमेत—विशेष आनन्द लूटे; तत्—उसमें; मुनिः—मुनि।

किन्तु एक परम सत्य होता है, जिसमें माया यह सोचते हुए कि, ''मैं इस व्यक्ति को वश में कर सकती हूँ क्योंकि यह कपटी है'' निर्भय होकर अपना प्रभुत्व नहीं दिखा सकती। सर्वोच्च सत्य में मायामय तर्क-वितर्क के दर्शन नहीं होते। प्रत्युत उसमें अध्यात्म विद्या के असली जिज्ञासु निरन्तर प्रमाणित आध्यात्मिक शोध में लगे रहते हैं। उस परम सत्य में भौतिक मन की अभिव्यक्ति नहीं होती, जो कभी निर्णय तो कभी संशय के रूप में कार्य करता है। सृजित वस्तुएँ, उनके सूक्ष्म कारण और उनके उपयोग से प्राप्त आनन्द के लक्ष्य वहाँ विद्यमान नहीं रहते। यही नहीं, उस परम सत्य में मिथ्या अहंकार तथा तीन गुणों से आच्छादित कोई बद्ध आत्मा नहीं होता। वह सत्य प्रत्येक सीमित अथवा असीमित वस्तु को अपने से अलग करता है। इसलिए जो बुद्धिमान है उसे चाहिए कि भौतिक जीवन की तरंगों को रोक कर परम सत्य के भीतर आनन्द लूटे।

तात्पर्य : भगवान् की मायाशक्ति उन लोगों पर मुक्त होकर अपना प्रभाव दिखाती है, जो दिखावटी, कपटी तथा ईश्वर के नियमों का उल्लंघन करने वाले होते हैं। चूँकि भगवान् सारे भौतिक गुणों से मुक्त हैं, अतएव उनकी उपस्थिति में माया स्वयं भयभीत रहती है। जैसाकि ब्रह्मा ने कहा है—*विलज्जमानया यस्य स्थातुम् ईक्षपतेऽमुया*—माया भगवान् के समक्ष आने में शरमाती है।

परम सत्य में व्यर्थ का बौद्धिक वाद-विवाद नहीं रहता। *श्रीमद्भागवत* (६.४.३१) में कहा गया है—

यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै
विवादसंवादभुवो भवन्ति।
कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहं
तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूम्ने॥

''मैं उन सर्वव्यापी भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ जो असीम दिव्य गुणों से युक्त हैं। विभिन्न मतों का विस्तार करने वाले सभी दार्शनिकों के हृदयों के भीतर से वे उन्हें उनकी आत्माओं को भुलवा देते हैं, जो कभी तो एकमत होते हैं और कभी आपस में मतभेद रखते हैं। इस तरह वे इस भौतिक जगत में ऐसी स्थिति ला देते हैं जिसमें वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाते। मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।''

परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद्
यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः ।
विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा
हृदोपगुह्यावसितं समाहितैः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

परम्—परम; पदम्—पद; वैष्णवम्—भगवान् विष्णु का; आमनन्ति—नामकरण करते हैं; तत्—वह; यत्—जो; न इति न इति—''नेति नेति''; इति—इस प्रकार विश्लेषण करते हुए; अतत्—हर वस्तु बाहरी; उत्सिसृक्षवः—त्यागने के इच्छुक जन; विसृज्य—त्याग कर; दौरात्म्यम्—क्षुद्र भौतिकता; अनन्य—अनन्य; सौहृदाः—उनका स्नेह; हृदा—अपने हृदयों के भीतर; उपगुह्य—उनका आलिंगन करके; अवसितम्—बन्दी बनाया हुआ; समाहितैः—समाधि में उनका ध्यान करने वालों के द्वारा।

जो लोग उन सारी वस्तुओं को बाह्य के निषेध द्वारा त्याग देना चाहते हैं, जो वास्तव में सत्य नहीं है, वे भगवान् विष्णु के परम पद की ओर नियमित रूप से आगे बढ़ते जाते हैं। वे क्षुद्र भौतिकता को त्याग कर अपने हृदयों के भीतर परब्रह्म को ही अपना प्रेम प्रदान करते हैं और स्थिर ध्यान में उस सर्वोच्च सत्य का आलिंगन करते हैं।

तात्पर्य : *यन्नेति नेतीत्यदुत्सिसृक्षवः* पद निषेधात्मक विवेक विधि का सूचक है, जिसके द्वारा परम सत्य की खोज में लगा हुआ व्यक्ति उन सारी बातों का बहिष्कार करता है, जो व्यर्थ, सतही तथा सापेक्ष हैं। संसार-भर में लोगों ने राजनीतिक, सामाजिक और यहाँ तक कि धार्मिक सत्यों की वैधता का धीरे-धीरे परित्याग कर दिया है किन्तु कृष्ण-भावनामृत के अभाव में वे मोहग्रस्त तथा उन्मादी बने रहते हैं। किन्तु यहाँ स्पष्ट कहा गया है—*परं पदं वैष्णवमात्मनन्ति तत्।* जो लोग पूर्ण ज्ञान के इच्छुक हैं, उन्हें न केवल व्यर्थ की वस्तुओं का बहिष्कार करना चाहिए अपितु उन्हें *परं पदं वैष्णवम्* के आध्यात्मिक सत्य को समझना चाहिए। पदम् भगवान् के पद तथा धाम का सूचक है, जिसको वे ही लोग समझ सकते हैं, जो क्षुद्र भौतिकता का परित्याग करते हैं और *अनन्य सौहृदम्*—भगवान् के लिए अनन्य प्रेम पद को ग्रहण करते हैं। ऐसा अनन्य प्रेम संकीर्ण मन वाला या साम्प्रदायिक नहीं होता, क्योंकि सारे जीव भगवान् के भीतर होने से स्वतः सेवित हो जाते हैं जब वे परम पुरुष की सेवा करते हैं। भगवान् तथा सारे जीवों की सर्वोच्च सेवा करने की यह विधि कृष्णभावनामृत का विज्ञान है, जिसकी शिक्षा पूरे *श्रीमद्भागवत* में दी गई है।

त एतदधिगच्छन्ति विष्णोर्यत्परमं पदम् ।
अहं ममेति दौर्जन्यं न येषां देहगेहजम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; एतत्—यह; अधिगच्छन्ति—जान पाते हैं; विष्णोः—भगवान् विष्णु का; यत्—जो; परमम्—परम; पदम्—पद; अहम्—मैं; मम—मेरा; इति—इस प्रकार; दौर्जन्यम्—दुर्जनता; न—नहीं है; येषाम्—जिसके लिए; देह—शरीर; गेह—तथा घर; जम्—पर आधारित।

ऐसे भक्त भगवान् विष्णु के परम आध्यात्मिक पद को समझ पाते हैं क्योंकि वे ''मैं'' तथा ''मेरा'' के विचारों से, जो शरीर तथा घर पर आधारित हैं, दूषित नहीं होते।

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ।
न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

अति-वादान्—अपमानजनक शब्द; तितिक्षेत—सहन करे; न—कभी नहीं; अवमन्येत—अनादर करे; कञ्चन—किसी का; न च—न तो; इमम्—इस; देहम्—भौतिक शरीर; आश्रित्य—पहचान बनाकर; वैरम्—शत्रुता; कुर्वीत—करे; केनचित्—किसी से।

मनुष्य को सारा अपमान सहन कर लेना चाहिए और किसी व्यक्ति के प्रति उचित सम्मान प्रदर्शित करने से चूकना नहीं चाहिए। भौतिक शरीर से पहचान बनाने से बचते हुए मनुष्य को किसी के साथ शत्रुता उत्पन्न नहीं करनी चाहिए।

नमो भगवते तस्मै कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।
यत्पादाम्बुरुहध्यानात्संहितामध्यगामिमाम् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; भगवते—भगवान्; तस्मै—उन; कृष्णाय—कृष्ण को; अकुण्ठ-मेधसे—जिनकी शक्ति कभी रुद्ध नहीं होती; यत्—जिनके; पाद-अम्बु-रुह—चरणकमलों पर; ध्यानात्—ध्यान से; संहिताम्—शास्त्र को; अध्यगाम्—मैंने आत्मसात किया है; इमाम्—इस।

मैं अनवरुद्ध भगवान् कृष्ण को नमस्कार करता हूँ। उनके चरणकमलों पर ध्यान धरने से ही मैं इस महान् ग्रंथ का अध्ययन कर सका और इसकी सराहना कर सका।

श्रीशौनक उवाच

पैलादिभिर्व्यासशिष्यैर्वेदाचार्यैर्महात्मभिः ।
वेदाश्च कथिता व्यस्ता एतत्सौम्याभिधेहि नः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शौनकः उवाच—श्री शौनक ऋषि ने कहा; पैल-आदिभिः—पैल तथा अन्यों द्वारा; व्यास-शिष्यैः—श्रील व्यासदेव के शिष्य; वेद-आचार्यैः—वेदों के आदर्श अधिकारियों द्वारा; महा-आत्मभिः—महान् बुद्धि वाले; वेदाः—वेद; च—तथा; कथिताः—कहा गया; व्यस्ताः—विभाजित; एतत्—यह; सौम्य—हे भद्र सूत; अभिधेहि—कृपया कह सुनायें; नः—हमसे।

शौनक ऋषि ने कहा : हे सौम्य सूत, कृपा करके हमें बतलायें कि किस तरह पैल तथा श्रील व्यासदेव के अत्यन्त परम बुद्धिमान शिष्यों ने, जो कि वैदिक विद्या के आदर्श अधिकारी माने जाते हैं, वेदों का प्रवचन तथा सम्पादन किया।

सूत उवाच

समाहितात्मनो ब्रह्मन्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
हृद्याकाशादभून्नादो वृत्तिरोधाद्विभाव्यते ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; समाहित-आत्मनः—जिसका मन पूरी तरह से स्थिर था; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण (शौनक); ब्रह्मणः—ब्रह्मा का; परमे-स्थिनः—जीवों में सर्वोच्च; हृदि—हृदय में; आकाशात्—आकाश से; अभूत्—उठी; नादः—दिव्य सूक्ष्म ध्वनि; वृत्ति-रोधात्—कार्य (कानों का) रोकने पर; विभाव्यते—अनुभव किया जाता है।

सूत गोस्वामी ने कहा : हे ब्राह्मण, दिव्य ध्वनि की प्रथम सूक्ष्म गूँज सर्वश्रेष्ठ ब्रह्माजी के

हृदयरूपी आकाश से प्रकट हुई जिनका मन आध्यात्मिक साक्षात्कार में पूरी तरह स्थिर था। इस सूक्ष्म गूँज का अनुभव कोई भी व्यक्ति कर सकता है जब वह अपनी सारी बाह्य श्रवण-क्रिया को रोक लेता है।

तात्पर्य : चूँकि *श्रीमद्भागवत* सर्वश्रेष्ठ वैदिक ग्रंथ है, अतएव शौनक आदि मुनियों ने इसके स्रोत का पता लगाना चाहा।

यदुपासनया ब्रह्मन्योगिनो मलमात्मनः ।
द्रव्यक्रियाकारकाख्यं धूत्वा यान्त्यपुनर्भवम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिस (वेदों के सूक्ष्म रूप) की; उपासनया—पूजा से; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; योगिनः—योगीजन; मलम्—कल्मष के; आत्मनः—हृदय के; द्रव्य—वस्तु; क्रिया—सक्रियता; कारक—तथा कर्ता; आख्यम्—उपाधिवाला; धूत्वा—स्वच्छ करके; यान्ति—प्राप्त करते हैं; अपुनः-भवम्—पुनर्जन्म से छुटकारा।

हे ब्राह्मण, वेदों के इस सूक्ष्म रूप की पूजा द्वारा योगीजन वस्तु की अशुद्धि, क्रिया तथा कर्ता से उत्पन्न सारे कल्मष से अपने हृदयों को स्वच्छ बनाते हैं और इस तरह वे बारम्बार जन्म-मृत्यु से छुटकारा प्राप्त कर लेते हैं।

ततोऽभूत्त्रिवृदोंकारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराट् ।
यत्तल्लिङ्गं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

ततः—उससे; अभूत्—उत्पन्न हुआ; त्रि-वृत्—तीन मात्राओं वाला; ॐ-कारः—ॐ अक्षर; यः—जो; अव्यक्त—अप्रकट; प्रभवः—जिसका प्रभाव; स्व-राट्—आत्म-अभिव्यक्ति; यत्—जो; तत्—वह; लिङ्गम्—स्वरूप; भगवतः—भगवान् का; ब्रह्मणः—परब्रह्म का उनके निर्विशेष रूप में; परम-आत्मनः—तथा परमात्मा का।

उस दिव्य सूक्ष्म गूँज से तीन मात्राओं वाला ॐकार उत्पन्न हुआ। ॐकार में अदृश्य शक्तियाँ हैं और यह शुद्ध हृदय के भीतर अपने आप प्रकट होता है। यह परब्रह्म की तीनों अवस्थाओं—भगवान्, परमात्मा तथा परम निर्विशेष सत्य—में उनका स्वरूप है।

शृणोति य इमं स्फोटं सुप्तश्रोत्रे च शून्यदृक् ।
येन वाग्व्यज्यते यस्य व्यक्तिराकाश आत्मनः ॥ ४० ॥
स्वधाम्नो ब्राह्मणः साक्षाद्वाचकः परमात्मनः ।
स सर्वमन्त्रोपनिषद्वेदबीजं सनातनम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

शृणोति—सुनता है; यः—जो; इमम्—इस; स्फोटम्—अव्यक्त तथा नित्य सूक्ष्म ध्वनि को; सुप्त-श्रोत्रे—जब श्रवणेन्द्रिय सुप्त रहती है; च—तथा; शून्य-दृक्—भौतिक दृष्टि तथा अन्य ऐन्द्रिय कार्यों से विहीन; येन—जिससे; वाक्—वैदिक ध्वनि का विस्तार; व्यज्यते—विस्तृत किया जाता है; यस्य—जिसका; व्यक्तिः—अभिव्यक्ति; आकाशे—आकाश (हृदय के) में; आत्मनः—आत्मा से; स्व-धाम्नः—जो अपना ही उद्गम है; ब्रह्मणः—परब्रह्म का; साक्षात्—प्रत्यक्ष; वाचकः—

नामसूचक पद; परम-आत्मन:—परमात्मा का; स:—वह; सर्व—सभी; मन्त्र—वैदिक स्तोत्र; उपनिषत्—गुह्य; वेद—वेदों का; बीजम्—बीज; सनातनम्—शाश्वत।

यह ॐकार, जोकि अन्तत: अभौतिक तथा अश्रव्य होता है, उसे परमात्मा कान या कोई अन्य इन्द्रियाँ न होते हुए भी सुनता है। वैदिक ध्वनि का पूरा विस्तार ॐकार से ही हुआ है, जो हृदय के आकाश के भीतर आत्मा से प्रकट होता है। यह स्व-जन्मा परब्रह्म परमात्मा की प्रत्यक्ष उपाधि है और गुह्य सार तथा समस्त वैदिक स्तोत्रों का नित्य बीज है।

तात्पर्य : सोये हुए पुरुष की इन्द्रियाँ तब तक कार्य नहीं करतीं जब तक वह जाग नहीं जाता। इसीलिए जब सोया हुआ पुरुष किसी शोर से जगाया जाता है, तो यह पूछा जा सकता है कि, "शोर किसने सुना?" *सुप्त-श्रोत्रे* शब्द यह सूचित करते हैं कि भगवान् हृदय के भीतर ध्वनि को सुनते हैं और सोये हुए जीव को जगाते हैं। भगवान् की ऐन्द्रिय क्रिया सदैव उच्चतर स्तर पर कार्य करती रहती है। अन्तत: सारी ध्वनियाँ आकाश के भीतर गूँजती हैं और हृदय के भीतर एक प्रकार का आकाश होता है, जो वैदिक ध्वनियों की गूँज के लिए है। समस्त वैदिक ध्वनियों का बीज या स्रोत ॐकार है। इसकी पुष्टि *ॐ इत्येतद् ब्रह्मणो नेदिष्ठं नाम* वैदिक कथन से होती है। वैदिक बीज ध्वनि का पूर्ण विस्तार श्रीमद्भागवत है, जो सबसे बड़ा वैदिक ग्रंथ है।

तस्य ह्यासंस्त्रयो वर्णा अकाराद्या भृगूद्वह ।
धार्यन्ते यैस्त्रयो भावा गुणनामार्थवृत्तय: ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उस ॐकार के; हि—निस्सन्देह; आसन्—हुए; त्रय:—तीन; वर्णा:—अक्षर की ध्वनियाँ; अ-कार-आद्या:—अ अक्षर से प्रारम्भ करके; भृगु-उद्वह—हे भृगुवंशियों में अत्यन्त प्रसिद्ध; धार्यन्ते—धारण किये जाते हैं; यै:—जिन तीन ध्वनियों से; त्रय:—तीन; भावा:—संसार की स्थितियाँ; गुण—प्रकृति के गुण; नाम—नाम; अर्थ—लक्ष्य; वृत्तय:—तथा चेतना की स्थितियाँ।

ॐकार से अ, उ तथा म वर्णों की तीन मौलिक ध्वनियाँ प्रकट हुईं। हे भृगुवंशियों में प्रसिद्ध, ये तीनों भौतिक जगत के तीन विभिन्न पक्षों को धारण करते हैं जिनमें प्रकृति के तीन गुण ऋक्, यजुर् तथा साम वेदों के नाम से, भूर्, भुवर् तथा स्वर् लोकों के नाम से विख्यात लक्ष्य तथा जागृत, सुप्त एवं सुषुप्त नामक तीन वृत्तियाँ धारण करते हैं।

ततोऽक्षरसमाम्नायमसृजद्भगवानज: ।
अन्तस्थोष्मस्वरस्पर्शह्रस्वदीर्घादिलक्षणम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

तत:—उस ॐकार से; अक्षर—विभिन्न ध्वनियों का; समाम्नायम्—सम्पूर्ण संग्रह (वर्णमाला); असृजत्—उत्पन्न किया; भगवान्—शक्तिमान देवता; अज:—अजन्मा ब्रह्मा; अन्त-स्थ—अर्द्धस्वरों के रूप में; उष्म—उष्म; स्वर—स्वर; स्पर्श—तथा व्यंजन; ह्रस्व-दीर्घ—लघु तथा गुरु रूप; आदि—इत्यादि; लक्षणम्—लक्षणों से युक्त।

ब्रह्मा ने ॐकार से अक्षर की सारी ध्वनियाँ—स्वर, व्यंजन, अर्धस्वर, उष्म, स्पर्श इत्यादि उत्पन्न कीं जो ह्रस्व तथा दीर्घ माप जैसे गुणों से विभेदित की जाती हैं।

तेनासौ चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वदनैर्विभुः ।
सव्याहृतिकान्सोंकारांश्चातुर्होत्रविवक्षया ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

तेन—उस ध्वनि समूह से; असौ—उसने; चतुरः—चार; वेदान्—वेदों को; चतुर्भिः—अपने चार; वदनैः—मुखों से; विभुः—सर्वशक्तिमान; स-व्याहृतिकान्—व्याहृतियों (भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः तथा सत्य नामक सात लोकों के नाम) सहित; स-ओंकारान्—ॐ बीज समेत; चातुः-होत्र—चारों वेदों में से प्रत्येक के पुरोहितों द्वारा सम्पन्न यज्ञ के चार पक्ष; विवक्षया—वर्णन करने की इच्छा से।

सर्वशक्तिमान ब्रह्मा ने ध्वनियों के इस समूह का उपयोग अपने चार मुखों से चार वेदों को उत्पन्न करने के लिए किया जो पवित्र ॐकार तथा सात व्याहृतियों समेत प्रकट हुए। उनका अभीष्ट वैदिक यज्ञ विधि को चार वेदों में से प्रत्येक के पुरोहितों द्वारा सम्पन्न विभिन्न कार्यों तक विस्तार देना था।

पुत्रानध्यापयत्तांस्तु ब्रह्मर्षीन्ब्रह्मकोविदान् ।
ते तु धर्मोपदेष्टारः स्वपुत्रेभ्यः समादिशन् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

पुत्रान्—अपने पुत्रों को; अध्यापयत्—पढ़ाया; तान्—उन वेदों को; तु—तथा; ब्रह्म-ऋषीन्—ब्रह्मर्षियों को; ब्रह्म—वैदिक पाठ की कला में; कोविदान्—पटु; ते—वे; तु—यही नहीं; धर्म—धार्मिक अनुष्ठानों में; उपदेष्टारः—शिक्षकों; स्व-पुत्रेभ्यः—अपने पुत्रों को; समादिशन्—प्रदान किया।

ब्रह्मा ने इन वेदों की शिक्षा अपने पुत्रों को दी जो ब्राह्मणों में ब्रह्मर्षि थे और वैदिक वाचन-कला में पटु थे। फिर उन्होंने स्वयं आचार्यों की भूमिका ग्रहण की और अपने-अपने पुत्रों को वेदों की शिक्षा दी।

ते परम्परया प्राप्तास्तत्तच्छिष्यैर्धृतव्रतैः ।
चतुर्युगेष्वथ व्यस्ता द्वापरादौ महर्षिभिः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

ते—ये वेद; परम्परया—परम्परा से; प्राप्ताः—प्राप्त; तत्-तत्—प्रत्येक अगली पीढ़ी के; शिष्यैः—शिष्यों द्वारा; धृत-व्रतैः—अपने व्रतों में दृढ़; चतुः-युगेषु—चारों युगों में; अथ—तब; व्यस्ताः—विभाजित कर दिये गये; द्वापर-आदौ—द्वापर युग के अन्त में; महा-ऋषिभिः—महान् आचार्यों द्वारा।

इस तरह चतुर्युग के सारे चक्रों में दृढ़व्रत शिष्यों की पीढ़ी-दर-पीढ़ी ने परम्परा द्वारा इन वेदों को प्राप्त किया। प्रत्येक द्वापर युग के अन्त में इन वेदों को प्रसिद्ध मुनिगण पृथक् विभागों में संपादित करते हैं।

क्षीणायुषः क्षीणसत्त्वान्दुर्मेधान्वीक्ष्य कालतः ।
वेदान्ब्रह्मर्षयो व्यस्यन्हृदिस्थाच्युतचोदिताः ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

क्षीण-आयुषः—घटी हुई आयु वाले; क्षीण-सत्त्वान्—घटे हुए बल वाले; दुर्मेधान्—अल्पज्ञों को; वीक्ष्य—देख कर; कालतः—काल के प्रभाव से; वेदान्—वेदों को; ब्रह्म-ऋषयः—प्रमुख मुनियों ने; व्यस्यन्—विभाजित कर दिया; हृदि-स्थ—अपने हृदयों के भीतर स्थित; अच्युत—अच्युत भगवान् द्वारा; चोदिताः—प्रेरित।

यह देख कर कि काल के प्रभाव से सामान्यतया लोगों की आयु, शक्ति तथा बुद्धि घटती जा रही है, महामुनियों ने अपने हृदयों में स्थित भगवान् से प्रेरणा ली और वेदों का क्रमबद्ध विभाजन कर दिया।

अस्मिन्नप्यन्तरे ब्रह्मन्भगवान्लोकभावनः ।
ब्रह्मेशाद्यैर्लोकपालैर्याचितो धर्मगुप्तये ॥ ४८ ॥
पराशरात्सत्यवत्यामंशांशकलया विभुः ।
अवतीर्णो महाभाग वेदं चक्रे चतुर्विधम् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

अस्मिन्—इसमें; अपि—भी; अन्तरे—मनु के शासन में; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण (शौनक); भगवान्—भगवान्; लोक—ब्रह्माण्ड के; भावनः—रक्षक; ब्रह्म—ब्रह्मा; ईश—शिव; आद्यैः—तथा अन्यों द्वारा; लोक-पालैः—विभिन्न लोकों के शासकों द्वारा; याचितः—प्रार्थना किये जाने पर; धर्म-गुप्तये—धर्म की रक्षा के लिए; पराशरात्—पराशर मुनि से; सत्यवत्याम्—सत्यवती के गर्भ से; अंश—अपने स्वांश (संकर्षण); अंश—अंश (विष्णु) के; कलया—कला के रूप में; विभुः—भगवान्; अवतीर्णः—अवतरित; महा-भाग—हे परम भाग्यवान्; वेदम्—वेदों को; चक्रे—कर दिया; चतुः-विधम्—चार भागों में।

हे ब्राह्मण, वैवस्वत मनु के वर्तमान युग में, ब्रह्मा, शिव इत्यादि ब्रह्माण्ड के नायकों ने समस्त जगतों के रक्षक भगवान् से धर्म के सिद्धान्तों की रक्षा करने के लिए प्रार्थना की। हे परम भाग्यवान शौनक, तब अपने स्वांश के अंश का दैवी स्फुलिंग प्रदर्शित करतेहुए पराशर के पुत्र के रूप में सत्यवती के गर्भ से भगवान् प्रकट हुए। इस रूप में, जिसे कृष्ण द्वैपायन व्यास कहते हैं, उन्होंने एक वेद के चार भाग कर दिये।

ऋगथर्वयजुःसाम्नां राशीरुद्धृत्य वर्गशः ।
चतस्रः संहिताश्चक्रे मन्त्रैर्मणिगणा इव ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

ऋक्-अथर्व-यजुः-साम्नाम्—ऋग्, अथर्व, यजुर तथा सामवेद; राशीः—(मंत्रों का) संकलन; उद्धृत्य—विलग करके; वर्गशः—विशिष्ट वर्गों में; चतस्रः—चार; संहिताः—संग्रह; चक्रे—कर दिया; मन्त्रैः—मंत्रों से; मणि-गणाः—मणियों के; इव—सदृश।

श्रील व्यासदेव ने ऋग्, अथर्व, यजुर् तथा साम वेदों के मंत्रों को चार वर्गों में विलग कर दिया जिस तरह मणियों के मिले-जुले संग्रह में से ढेरियाँ लगा दी जाती हैं। इस तरह उन्होंने चार पृथक्-पृथक् वैदिक ग्रंथों की रचना की।

तात्पर्य : जब सर्वप्रथम ब्रह्मा ने अपने चार मुखों से चार वेदों का उच्चारण किया, तो सारे मंत्र

उसी तरह मिले-जुले थे जिस तरह बिना छंटी मणियों के समूह में विभिन्न प्रकार की मणियाँ रहती हैं। श्रील व्यासदेव ने वैदिक मंत्रों को चार विभागों (संहिताओं) में छाँट दिया जो ऋग्, अथर्व, यजुर् तथा साम वेद कहलाये।

तासां स चतुरः शिष्यानुपाहूय महामतिः ।
एकैकां संहितां ब्रह्मन्नेकैकस्मै ददौ विभुः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

तासाम्—उन चार संग्रहों के; सः—उसने; चतुरः—चार; शिष्यान्—शिष्यों को; उपाहूय—पास बुलाकर; महा-मतिः—अत्यन्त बुद्धिमान मुनि; एक-एकाम्—एक-एक करके; संहिताम्—संग्रह; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; एक-एकस्मै—उनमें से प्रत्येक को; ददौ—दे दिया; विभुः—शक्तिमान व्यासदेव ने।

अत्यन्त शक्तिमान तथा बुद्धिमान व्यासदेव ने अपने चार शिष्यों को बुलाया और हे ब्राह्मण, उनमें से हर एक को इन चार संहिताओं में से एक-एक का भार सौंप दिया।

पैलाय संहितामाद्यां बह्वृचाख्यां उवाच ह ।
वैशम्पायनसंज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम् ॥ ५२ ॥
साम्नां जैमिनये प्राह तथा छन्दोगसंहिताम् ।
अथर्वाङ्गिरसीं नाम स्वशिष्याय सुमन्तवे ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

पैलाय—पैल को; संहिताम्—संग्रह; आद्याम्—प्रथम (ऋग्वेद का); बहु-ऋच-आख्यम्—बह्वृच नामक; उवाच—कहा; ह—निस्सन्देह; वैशम्पायन-संज्ञाय—वैशम्पायन नामक मुनि को; निगद-आख्यम्—निगद नामक; यजुः-गणम्—यजुर्मंत्रों का संग्रह; साम्नाम्—सामवेद के मंत्रों को; जैमिनये—जैमिनि को; प्राह—कहा; तथा—और; छन्दोग-संहिताम्—छंदोग नामक संहिता; अथर्व-अङ्गिरसीम्—अथर्व तथा अंगिरा मुनियों के नाम पर वेद; नाम—निस्सन्देह; स्व-शिष्याय—अपने शिष्य; सुमन्तवे—सुमन्तु को।

श्रील व्यासदेव ने प्रथम संहिता ऋग्वेद की शिक्षा पैल को दी और इस संग्रह का नाम बह्वृच रखा। मुनि वैशम्पायन से उन्होंने यजुर्मंत्रों का संग्रह, निगद, का प्रवचन किया। उन्होंने जैमिनि को सामवेद के मंत्रों की शिक्षा दी जिनका नाम छन्दोग संहिता था और अपने प्रिय शिष्य सुमन्तु से उन्होंने अथर्ववेद कहा।

पैलः स्वसंहितामूचे इन्द्रप्रमितये मुनिः ।
बाष्कलाय च सोऽप्याह शिष्येभ्यः संहितां स्वकाम् ॥ ५४ ॥
चतुर्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय भार्गव ।
पराशरायाग्निमित्र इन्द्रप्रमितिरात्मवान् ॥ ५५ ॥
अध्यापयत्संहितां स्वां माण्डूकेयमृषिं कविम् ।
तस्य शिष्यो देवमित्रः सौभर्यादिभ्य ऊचिवान् ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

पैलः—पैल ने; स्व-संहिताम्—अपने संग्रह को; ऊचे—कहा; इन्द्रप्रमितये—इन्द्रप्रमिति से; मुनिः—मुनि; बाष्कलाय—बाष्कल को; च—तथा; सः—उसने (बाष्कल ने); अपि—भी; आह—कहा; शिष्येभ्यः—अपने शिष्यों से; संहिताम्—संग्रह; स्वकाम्—अपना; चतुर्धा—चार भागों में; व्यस्य—विभाजित करके; बोध्याय—बोध्य से; याज्ञवल्क्याय—याज्ञवल्क्य से; भार्गव—हे भृगुवंशी (शौनक); पराशराय—पराशर से; अग्निमित्रे—अग्निमित्र से; इन्द्रप्रमितिः—इन्द्रप्रमिति; आत्म-वान्—आत्मसंयमी; अध्यापयत्—शिक्षा दी; संहिताम्—संग्रह को; स्वाम्—अपने; माण्डूकेयम्—माण्डूकेय से; ऋषिम्—ऋषि; कविम्—विद्वान; तस्य—उसका (माण्डूकेय का); शिष्यः—शिष्य; देवमित्रः—देवमित्र; सौभरि-आदिभ्यः—सौभरि तथा अन्यों से; ऊचिवान्—कहा।

अपनी संहिता को दो भागों में विभक्त करने के बाद विद्वान पैल ने इसे इन्द्रप्रमिति तथा बाष्कल को बताया। हे भार्गव, बाष्कल ने अपने संग्रह को पुनः चार भागों में विभाजित कर दिया और उन्हें अपने चार शिष्यों—बोध्य, याज्ञवल्क्य, पराशर तथा अग्निमित्र को पढ़ाया। आत्मसंयमी ऋषि इन्द्रप्रमिति ने अपनी संहिता विद्वान योगी माण्डूकेय को पढ़ाई जिसके शिष्य देवमित्र ने आगे चल कर सौभरि तथा अन्यों को ऋग्वेद के सारे विभाग दे दिये।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार माण्डूकेय इन्द्रप्रमिति का पुत्र था जिससे उसने वैदिक ज्ञान प्राप्त किया।

शाकल्यस्तत्सुतः स्वां तु पञ्चधा व्यस्य संहिताम् ।
वात्स्यमुद्गलशालीयगोखल्यशिशिरेष्वधात् ॥ ५७॥

शब्दार्थ

शाकल्यः—शाकल्य; तत्-सुतः—माण्डूकेय का पुत्र; स्वाम्—अपनी; तु—तथा; पञ्चधा—पाँच भागों में; व्यस्य—विभाजित करके; संहिताम्—संहिता का; वात्स्य-मुद्गल-शालीय—वात्स्य, मुद्गल तथा शालीय को; गोखल्य-शिशिरेषु—तथा गोखल्य और शिशिर को; अधात्—दिया।

माण्डूकेय के पुत्र शाकल्य ने अपनी संहिता को पाँच भागों में बाँट दिया और इनमें से प्रत्येक उपविभाग वात्स्य, मुद्गल, शालीय, गोखल्य तथा शिशिर को सौंप दिये।

जातूकर्ण्यश्च तच्छिष्यः सनिरुक्तां स्वसंहिताम् ।
बलाकपैलजाबालविरजेभ्यो ददौ मुनिः ॥ ५८॥

शब्दार्थ

जातूकर्ण्यः—जातूकर्ण्य; च—तथा; तत्-शिष्यः—शाकल्य का शिष्य; स-निरुक्ताम्—कठिन शब्दों की व्याख्या करने वाले शब्द संग्रह के साथ; स्व-संहिताम्—प्राप्त हुए संग्रह को; बलाक-पैल-जाबाल-विरजेभ्यः—बलाक, पैल, जाबाल तथा विरज को; ददौ—दे दिया; मुनिः—मुनि ने।

मुनि जातूकर्ण्य भी शाकल्य का शिष्य था। उसने शाकल्य से प्राप्त संहिता के तीन विभाग किये और उसमें एक चौथा अनुभाग वैदिक शब्द संग्रह (निरुक्त) का जोड़ दिया। उसने इन चारों भागों में से एक-एक विभाग अपने चार शिष्यों—बलाक, द्वितीय पैल, जाबाल तथा विरज को पढ़ाया।

बाष्कलिः प्रतिशाखाभ्यो वालखिल्याख्यसंहिताम् ।
चक्रे वालायनिर्भज्यः काशारश्चैव तां दधुः ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

बाष्कलिः—बाष्कल का पुत्र बाष्कलि; प्रति-शाखाभ्यः—विभिन्न शाखाओं से; वालखिल्य-आख्य—वालखिल्य शीर्षक वाले; संहिताम्—संग्रह को; चक्रे—बनाया; वालायनिः—वालायनि; भज्यः—भज्य; काशारः—काशार; च—तथा; एव—निस्सन्देह; ताम्—उसको; दधुः—स्वीकार किया।

बाष्कलि ने, ऋग्वेद की समस्त शाखाओं से, वालखिल्य संहिता तैयार की। यह संहिता वालायनि, भज्य तथा काशार को प्राप्त हुई।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार वालायनि, भज्य तथा काशार दैत्य वंश के थे।

बह्वृचाः संहिता ह्येता एभिर्ब्रह्मर्षिभिर्धृताः ।
श्रुत्वैतच्छन्दसां व्यासं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

बहु-ऋचाः—ऋग्वेद की; संहिताः—संहिताएँ; हि—निस्सन्देह; एताः—ये; एभिः—इन; ब्रह्म-ऋषिभिः—सन्त ब्राह्मणों द्वारा; धृताः—परम्परा से धारण की हुई; श्रुत्वा—सुन कर; एतत्—उनके; छन्दसाम्—पवित्र श्लोकों के; व्यासम्—विभाजन की विधि; सर्व-पापैः—सभी पापों से; प्रमुच्यते—छूट जाता है।

इन सन्त ब्राह्मणों ने ऋग्वेद की इन विविध संहिताओं को शिष्य-परम्परा द्वारा बनाये रखा। वैदिक स्तोत्रों के इस विभाजन को सुनने मात्र से मनुष्य सारे पापों से छूट जाता है।

वैशम्पायनशिष्या वै चरकाध्वर्यवोऽभवन् ।
यच्चेरुर्ब्रह्महत्यांहः क्षपणं स्वगुरोर्व्रतम् ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

वैशम्पायन-शिष्याः—वैशम्पायन के शिष्य; वै—निस्सन्देह; चरक—चरक नाम के; अध्वर्यवः—अथर्ववेद के आचार्य; अभवन्—बने; यत्—क्योंकि; चेरुः—उन्होंने सम्पन्न किया; ब्रह्म-हत्या—ब्राह्मण-वध के कारण; अंहः—पाप का; क्षपणम्—प्रायश्चित्त; स्व-गुरोः—अपने ही गुरु के लिए; व्रतम्—व्रत।

वैशम्पायन के शिष्य अथर्ववेद के आचार्य बने। वे चरक कहलाते थे क्योंकि उन्होंने अपने गुरु को ब्राह्मण-हत्या के पाप से मुक्त कराने के लिए कठिन व्रत किए थे।

याज्ञवल्क्यश्च तच्छिष्य आहाहो भगवन्कियत् ।
चरितेनाल्पसाराणां चरिष्येऽहं सुदुश्चरम् ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ

याज्ञवल्क्यः—याज्ञवल्क्य; च—तथा; तत्-शिष्यः—वैशम्पायन का शिष्य; आह—कहा; अहो—जरा देखो; भगवन्—हे प्रभु; कियत्—कितना; चरितेन—प्रयत्न से; अल्प-साराणाम्—इन निर्बल व्यक्तियों के; चरिष्ये—पूरा करूँगा; अहम्—मैं; सु-दुश्चरम्—जिसे पूरा कर पाना अत्यन्त कठिन है।

एक बार वैशम्पायन के एक शिष्य याज्ञवल्क्य ने कहा ''हे प्रभु, आपके इन निर्बल शिष्यों के दुर्बल प्रयासों से कितना लाभ प्राप्त किया जा सकता है? मैं स्वयं कुछ अद्वितीय

तपस्या करूँगा।

इत्युक्तो गुरुरप्याह कुपितो याह्यलं त्वया ।
विप्रावमन्त्रा शिष्येण मदधीतं त्यजाश्विति ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्तः—कहा गया; गुरुः—उसके गुरु ने; अपि—भी; आह—कहा; कुपितः—क्रुद्ध; याहि—चले जाओ; अलम्—बहुत हुआ; त्वया—तुमसे; विप्र-अवमन्त्रा—ब्राह्मणों का अपमान करने वाले; शिष्येण—ऐसे शिष्य से; मत्-अधीतम्—मेरे द्वारा जो पढ़ाया गया; त्यज—त्याग दो; आशु—तुरन्त; इति—इस प्रकार।

ऐसा कहे जाने पर गुरु वैशम्पायन क्रुद्ध हो उठे और कहा : ''यहाँ से निकल जाओ! अरे ब्राह्मणों का अपमान करने वाले शिष्य! बहुत हो चुका। तुम तुरन्त ही वह सब लौटा दो जो मैंने तुम्हें पढ़ाया है।''

तात्पर्य : वैशम्पायन इसलिए क्रुद्ध थे क्योंकि उनका एक शिष्य याज्ञवल्क्य अन्य शिष्यों का अपमान कर रहा था, जो योग्य ब्राह्मण थे। जिस तरह पिता अपने एक पुत्र द्वारा अन्य पुत्रों के साथ दुर्व्यवहार होते देख कर विक्षुब्ध हो उठता है उसी तरह यदि कोई घमंडी शिष्य गुरु के अन्य शिष्यों का अपमान करता है या दुर्व्यवहार करता है, तो गुरु अत्यन्त क्रुद्ध हो जाता है।

देवरातसुतः सोऽपि छर्दित्वा यजुषां गणम् ।
ततो गतोऽथ मुनयो ददृशुस्तान्यजुर्गणान् ॥ ६४ ॥
यजूंषि तित्तिरा भूत्वा तल्लोलुपतयाददुः ।
तैत्तिरीया इति यजुःशाखा आसन्सुपेशलाः ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ

देवरात-सुतः—देवरात का पुत्र (याज्ञवल्क्य); सः—वह; अपि—निस्सन्देह; छर्दित्वा—उगलते हुए; यजुषाम्—यजुर्वेद के; गणम्—संचित मंत्र; ततः—वहाँ से; गतः—चला गया; अथ—तब; मुनयः—मुनियों ने; ददृशुः—देखा; तान्—उन; यजुः-गणान्—यजुर्मंत्रों को; यजूंषि—ये यजुः; तित्तिराः—तीतर; भूत्वा—बन कर; तत्—उन मंत्रों के लिए; लोलुपतया—ललचाई इच्छा से; आददुः—उन्हें चुग लिया; तैत्तिरीयाः—तैत्तिरीय नाम से; इति—इस प्रकार; यजुः-शाखाः—यजुर्वेद की शाखाएँ; आसन्—बनीं; सु-पेशलाः—अत्यन्त सुन्दर।

तब देवरात पुत्र याज्ञवल्क्य ने यजुर्वेद के मंत्र उगल दिए और वहाँ से चला गया। इन यजुर्मंत्रों को ललचाई दृष्टि से देख रहे एकत्र शिष्यों ने तीतरों का रूप धारण करके उन्हें चुग लिया। इसलिए यजुर्वेद के ये विभाग अत्यन्त सुन्दर तैत्तिरीय संहिता अर्थात् तीतरों द्वारा संकलित मंत्र के नाम से विख्यात हुए।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार वमन की हुई वस्तु को एकत्र करना ब्राह्मणों के लिए अनुचित है, इसीलिए वैशम्पायन के ब्राह्मण शिष्यों ने तित्तरों का रूप धारण किया और बहुमूल्य मंत्रों का संग्रह किया।

याज्ञवल्क्यस्ततो ब्रह्मंश्छन्दांस्यधि गवेषयन् ।
गुरोरविद्यमानानि सूपतस्थेऽर्कमीश्वरम् ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ

याज्ञवल्क्यः—याज्ञवल्क्य; ततः—तत्पश्चात्; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; छन्दांसि—मंत्रों; अधि—अतिरिक्त; गवेषयन्—ढूँढते हुए; गुरोः—अपने गुरु के; अविद्यमानानि—अज्ञात; सु-उपतस्थे—सावधानी से पूजा की; अर्कम्—सूर्य की; ईश्वरम्—शक्तिमान नियन्ता।

हे ब्राह्मण शौनक, तब याज्ञवाल्क्य ने ऐसे नवीन यजुर्मंत्रों की खोज करनी चाही जो उसके गुरु को भी ज्ञात न हों। इसे मन में रख कर उसने शक्तिशाली सूर्य देव की ध्यानपूर्वक पूजा की।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच

ॐ नमो भगवते आदित्यायाखिलजगतामात्मस्वरूपेण काल स्वरूपेण चतुर्विधभूतनिकायानां ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तानामन्तर्हृदयेषु बहिरपि चाकाश इवोपाधिनाव्यवधीयमानो भवानेक एव क्षणलवनिमेषावयवोपचितसंवत्सरगणेनापामादान विसर्गाभ्यामिमां लोकयात्रामनुवहति ।

शब्दार्थ

श्री-याज्ञवल्क्यः उवाच—श्री याज्ञवल्क्य ने कहा; ॐ नमः—मैं सादर नमस्कार करता हूँ; भगवते—भगवान् को; आदित्याय—सूर्य देव के रूप में प्रकट होने वाले; अखिल-जगताम्—सम्पूर्ण लोकों के; आत्म-स्वरूपेण—परमात्मा के रूप में; काल-स्वरूपेण—काल के रूप में; चतुः-विध—चार प्रकार के; भूत-निकायानाम्—समस्त जीवों के; ब्रह्म-आदि—ब्रह्मा इत्यादि; स्तम्ब-पर्यन्तानाम्—तथा घास की पत्ती तक; अन्तः-हृदयेषु—उनके हृदयों के रिक्त स्थानों में; बहिः—बाह्य रूप से; अपि—भी; च—तथा; आकाशः इव—आकाश की तरह; उपाधिना—उपाधियों से; अव्यवधीयमानः—आच्छादित न होकर; भवान्—आप; एकः—एकमात्र; एव—निस्सन्देह; क्षण-लव-निमेष—क्षण, लव तथा निमेष (समय के सूक्ष्मतम खंड); अवयव—इन खंडों से; उपचित—एकसाथ संकलित; संवत्सर-गणेन—वर्षों तक; अपाम्—जल के; आदान—निकाल लेने से; विसर्गाभ्याम्—तथा देने से; इमाम्—इस; लोक—ब्रह्माण्ड का; यात्राम्—पालन; अनुवहति—वहन करता है।

श्री याज्ञवल्क्य ने कहा : मैं सूर्य देव के रूप में प्रकट भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ। आप चार प्रकार के जीवों के जिनमें ब्रह्मा से लेकर घास की पत्ती तक सम्मिलित हैं, नियन्ता के रूप में उपस्थित हैं। जिस तरह आकाश हर जीव के भीतर तथा बाहर विद्यमान रहता है, उसी तरह आप परमात्मा रूप में सभी के हृदयों के भीतर तथा काल रूप में उनके बाहर उपस्थित रहते हैं। जिस तरह आकाश उसमें विद्यमान बादलों से आच्छादित नहीं हो सकता उसी तरह आप मिथ्या भौतिक उपाधि से कभी प्रच्छन्न नहीं होते। एक वर्ष क्षण, लव तथा निमेष जैसे लघु काल-खण्डों से बना है और वर्षों के प्रवाह से आप जल को सुखा कर तथा पुनः उसे वर्षा के रूप में जगत को प्रदान करके, उसका अकेले ही पालन-पोषण करते हैं।

तात्पर्य : यह स्तुति स्वतंत्र रूप से सूर्य देव को अर्पित नहीं है अपितु भगवान् को अर्पित है जिन्हें उनके शक्तिमान अंश, सूर्य देव, द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

यदु ह वाव विबुधर्षभ सवितरदस्तपत्यनुसवनमहर्
अहराम्नायविधिनोपतिष्ठमानानामखिलदुरितवृजिन बीजावभर्जन भगवत: समभिधीमहि तपन मण्डलम्. ॥ ६८ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो; उ ह वाव—निस्सन्देह; विबुध-ऋषभ—हे देवताओं के प्रधान; सवित:—हे सूर्य देव; अद:—वह; तपति—चमकता है; अनुसवनम्—दिन की हर संधि पर (सूर्योदय, दोपहर तथा सूर्यास्त पर); अह: अह:—प्रतिदिन; आम्नाय-विधिना—शिष्य-परम्परा से प्राप्त वैदिक मार्ग द्वारा; उपतिष्ठमानानाम्—स्तुति करने वालों का; अखिल-दुरित—सारे पापकर्म; वृजिन—मिलने वाले कष्ट; बीज—तथा उसके मूल बीज; अवभर्जन—हे जलाने वाले; भगवत:—परम नियन्ता का; समभिधीमहि—मैं पूरे मनोयोग से ध्यान करता हूँ; तपन—हे तपने वाले; मण्डलम्—गोले पर।

हे चमकने वाले, हे शक्तिमान सूर्य देव, आप सारे देवताओं में प्रमुख हैं। मैं आपके तेज मण्डल का मनोयोग से ध्यान करता हूँ क्योंकि जो कोई परम्परा से प्राप्त वैदिक विधि द्वारा प्रतिदिन आपकी तीन बार स्तुति करता है, उसके सारे पापकर्मों, सारे परवर्ती कष्टों तथाइच्छा के मूल बीज तक को आप जला देते हैं।

य इह वाव स्थिरचरनिकराणां निजनिकेतनानां मनइन्द्रियासु गणाननात्मन: स्वयमात्मान्तर्यामी प्रचोदयति. ॥ ६९ ॥

शब्दार्थ

य:—जो; इह—इस जगत में; वाव—निस्सन्देह; स्थिर-चर-निकराणाम्—समस्त जड़ तथा चेतन जीवों के; निज-निकेतनानाम्—जो आपकी शरण पर निर्भर हैं; मन:-इन्द्रिय-असु-गणान्—मन, इन्द्रियाँ तथा प्राण; अनात्मन:—जो जड़ पदार्थ हैं; स्वयम्—स्वयं; आत्म—उनके हृदयों में; अन्त:-यामी—अन्तर में निवास करने वाले प्रभु; प्रचोदयति—कर्म के लिए प्रेरित करता है।

आप उन समस्त जड़ तथा चेतन जीवों के हृदयों में अन्तर्यामी प्रभु के रूप में उपस्थित रहते हैं, जो पूरी तरह आपकी शरण पर आश्रित हैं। निस्सन्देह आप उनके मनों, इन्द्रियों तथा प्राणों को कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं।

य एवेमं लोकमतिकरालवदनान्धकारसंज्ञाजगरग्रह गिलितं मृतकमिव विचेतनमवलोक्यानुकम्पया परमकारुणिक ईक्षयैवोत्थाप्याहरहरनुसवनं श्रेयसि स्वधर्माख्यात्मावस्थाने प्रवर्तयति. ॥ ७० ॥

शब्दार्थ

य:—जो; एव—एकमात्र; इमम्—इस; लोकम्—जगत को; अति-कराल—अत्यन्त भयावना; वदन—जिसका मुँह; अन्धकार-संज्ञा—अंधकार कहलाने वाला; अजगर—अजगर द्वारा; ग्रह—पकड़ा हुआ; गिलितम्—तथा निगला हुआ; मृतकम्—मृत; इव—मानो; विचेतनम्—अचेत; अवलोक्य—देख कर; अनुकम्पया—दयापूर्वक; परम-कारुणिक:—अत्यन्त करुणामय; ईक्षया—दृष्टि फेर कर; एव—निस्सन्देह; उत्थाप्य—उन्हें उठाकर; अह: अह:—दिन-प्रतदिनि; अनु-सवनम्—दिन की तीन संधियों पर; श्रेयसि—परम लाभ में; स्व-धर्म-आख्य—आत्मा का उचित कर्म के रूप में विख्यात; आत्म-अवस्थाने—आध्यात्मिक जीवन के प्रति झुकाव में; प्रवर्तयति—लग जाता है।

यह संसार अंधकार रूपी अजगर के विकराल मुख में पड़ कर निगला जा चुका है और इस तरह अचेत है, मानो मृत है। किन्तु आप संसार के सोते हुए लोगों पर कृपापूर्ण दृष्टि फेरते हुए, अपनी दृष्टि के उपहार से उन्हें जगाते हैं। इस तरह आप सर्वाधिक करुणाकर हैं।

प्रतिदिन तीनों पवित्र संधियों पर आप पुण्यात्माओं को परम श्रेयस मार्ग में लगाते हैं और उन्हें धार्मिक कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं जिससे वे आध्यात्मिक पद को प्राप्त होते हैं।

तात्पर्य : वैदिक संस्कृति के अनुसार समाज के तीन उच्च वर्ण (बौद्धिक, राजनीतिक तथा व्यापारी वर्ग) दीक्षा के द्वारा गुरु से सम्बन्धित होते हैं और वे गायत्री मंत्र प्राप्त करते हैं। यह शुद्ध बनाने वाला मंत्र दिन में तीन बार—सूर्योदय, दोपहर तथा सूर्यास्त के समय—पढ़ा जाता है। आध्यात्मिक कर्मों को करने के लिए शुभ मुहूर्त की गणना आकाश में सूर्य के मार्ग के अनुसार की जाती है और यहाँ पर आध्यात्मिक कर्मों की इस सुव्यवस्था का श्रेय ईश्वर के प्रतिनिधि स्वरूप सूर्य को दिया गया है।

अवनिपतिरिवासाधूनां भयमुदीरयन्नटति परित आशापालैस् तत्र तत्र
कमलकोशाञ्जलिभिरुपहृतार्हणः. ॥ ७१ ॥

शब्दार्थ

अवनि-पतिः—राजा; इव—सदृश; असाधूनाम्—अपवित्र लोगों के; भयम्—भय; उदीरयन्—उत्पन्न करते हुए; अटति—इधर-उधर विचरण करता है; परितः—चारों ओर; आशा-पालैः—दिशाओं के अधिष्ठाता देवों द्वारा; तत्र तत्र—वहाँ वहाँ; कमल-कोश—कमल के फूल पकड़े हुए; अञ्जलिभिः—अंजुलियों से; उपहृत—भेंट की गई; अर्हणः—भेंटें।

आप पृथ्वी के राजा की ही तरह सर्वत्र विचरण करते हुए असाधुओं के बीच भय फैलाते हैं और दिशाओं के शक्तिमान देव हाथ जोड़ कर आपको कमल के फूल तथा अन्य आदरपूर्ण भेंटे प्रदान करते हैं।

अथ ह भगवंस्तव चरणनलिनयुगलं त्रिभुवनगुरुभिरभिवन्दितमहमयातयामयजुष्काम
ाउपसरामीति. ॥ ७२ ॥

शब्दार्थ

अथ—इस प्रकार; ह—निस्सन्देह; भगवन्—हे प्रभु; तव—तुम्हारा; चरण-नलिन-युगलम्—दो चरणकमल; त्रि-भुवन—तीन लोकों के; गुरुभिः—गुरुओं द्वारा; अभिवन्दितम्—सम्मानित; अहम्—मैं; अयात-याम—अन्य किसी से अज्ञात; यजुः-कामः—यजुर्मंत्र पाने के लिए इच्छुक; उपसरामि—पूजा के साथ निकट आ रहा हूँ; इति—इस प्रकार।

इसलिए हे प्रभु, मैं आपकी स्तुति करते हुए आप के उन चरणों तक पहुँचना चाहता हूँ जिनका सम्मान तीनों लोकों के आध्यात्मिक स्वामी करते हैं क्योंकि मैं आप से यजुर्वेद के उन मंत्रों को पाने के लिए आशान्वित हूँ जो अन्य किसी को ज्ञात नहीं हैं।

सूत उवाच
एवं स्तुतः स भगवान्वाजिरूपधरो रविः ।
यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात्प्रसादितः ॥ ७३ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; स्तुतः—स्तुति किये गये; सः—उसने; भगवान्—शक्तिशाली देवता; वाजि-रूप—घोड़े के रूप में; धरः—धारण करके; रविः—सूर्य देव; यजूंषि—यजुर्मंत्र; अयात-यामानि—अन्य किसी मर्त्य प्राणी से कुछ सीखा नहीं गया; मुनये—मुनि को; अदात्—प्रस्तुत किया; प्रसादितः—प्रसन्न होकर।

सूत गोस्वामी ने कहा : ऐसी स्तुति से प्रसन्न होकर शक्तिशाली सूर्य देव ने घोड़े का रूप धारण कर लिया और याज्ञवल्क्य मुनि को वे यजुर्मंत्र प्रदान किये जो मानव समाज में पहले अज्ञात थे।

यजुर्भिरकरोच्छाखा दश पञ्च शतैर्विभुः ।
जगृहुर्वाजसन्यस्ताः काण्वमाध्यन्दिनादयः ॥ ७४ ॥

शब्दार्थ

यजुर्भिः—यजुर्मंत्रों से; अकरोत्—बनायी; शाखाः—शाखाएँ; दश—दस; पञ्च—तथा पाँच; शतैः—सैकड़ों में; विभुः—शक्तिमान; जगृहुः—उन्होंने स्वीकार किया; वाज-सन्यः—घोड़े के अयाल से उत्पन्न अतः वाजसनेयी नाम से विख्यात; ताः—उनको; काण्व-माध्यन्दिन-आदयः—काण्व तथा अध्यन्दिन आदि ऋषियों के शिष्य।

यजुर्वेद के इन सैकड़ों मंत्रों से शक्तिशाली मुनि ने वैदिक वाङ्मय की पन्द्रह नवीन शाखाएँ बनाईं। ये वाजसनेयि संहिता के नाम से विख्यात हुईं क्योंकि वे घोड़े के अयालों से उत्पन्न हुई थीं और इन्हें काण्व, माध्यन्दिन तथा अन्य ऋषियों के अनुयायियों ने शिष्य-परम्परा में स्वीकार कर लिया।

जैमिनेः सामगस्यासीत्सुमन्तुस्तनयो मुनिः ।
सुत्वांस्तु तत्सुतस्ताभ्यामेकैकां प्राह संहिताम् ॥ ७५ ॥

शब्दार्थ

जैमिनेः—जैमिनि के; साम-गस्य—सामवेद का गवैया; आसीत्—था; सुमन्तुः—सुमन्तु; तनयः—पुत्र; मुनिः—मुनि (जैमिनि) के; सुत्वान्—सुत्वान; तु—तथा; तत्-सुतः—सुमन्तु का पुत्र; ताभ्याम्—उनमें से प्रत्येक को; एक-एकाम्—दो हिस्सों में से एक-एक नाम; प्राह—वह बोला; संहिताम्—संकलन।

सामवेद के अधिकारी जैमिनि ऋषि के सुमन्तु नाम का पुत्र था और सुमन्तु का पुत्र सुत्वान था। जैमिनि मुनि ने उनमें से हर एक को सामवेद संहिता के विभिन्न अंग सुनाये।

सुकर्मा चापि तच्छिष्यः सामवेदतरोर्महान् ।
सहस्रसंहिताभेदं चक्रे साम्नां ततो द्विज ॥ ७६ ॥
हिरण्यनाभः कौशल्यः पौष्यञ्जिश्च सुकर्मणः ।
शिष्यौ जगृहतुश्चान्य आवन्त्यो ब्रह्मवित्तमः ॥ ७७ ॥

शब्दार्थ

सुकर्मा—सुकर्मा; च—तथा; अपि—निस्सन्देह; तत्-शिष्यः—जैमिनि शिष्य; साम-वेद-तरोः—सामवेद रूपी वृक्ष के; महान्—महान् चिन्तक; सहस्र-संहिता—एक हजार संग्रहों का; भेदम्—एक भाग; चक्रे—बनाया; साम्नाम्—साम मंत्रों का; ततः—और तब; द्विज—हे ब्राह्मण (शौनक); हिरण्यनाभः कौशल्यः—कुशलपुत्र हिरण्यनाभ; पौष्यञ्जिः—पौष्यञ्जि;

च—तथा; सुकर्मणः—सुकर्मा के; शिष्यौ—दो शिष्य; जगृहतुः—ले लिया; च—तथा; अन्यः—दूसरा; आवन्त्यः—आवन्त्य; ब्रह्म-वित्-तमः—परब्रह्म के ज्ञान में पूर्णतया स्वरूपसिद्ध।

जैमिनि का दूसरा शिष्य सुकर्मा महान् पंडित था। उसने सामवेद रूपी विशाल वृक्ष को एक हजार संहिताओं में बाँट दिया। तब हे ब्राह्मण, सुकर्मा के तीन शिष्यों—कुशलपुत्र हिरण्यनाभ, पौष्यञ्जि तथा आध्यात्मिक साक्षात्कार में अग्रणी आवन्त्य—ने साम मंत्रों का भार सँभाला।

उदीच्याः सामगाः शिष्या आसन्पञ्चशतानि वै ।
पौष्यञ्ज्यावन्त्ययोश्चापि तांश्च प्राच्यान्प्रचक्षते ॥ ७८ ॥

शब्दार्थ

उदीच्याः—उत्तर दिशा के सम्बद्ध; साम-गाः—सामवेद का गायक; शिष्याः—शिष्य; आसन्—थे; पञ्च-शतानि—पाँच सौ; वै—निस्सन्देह; पौष्यञ्जि-आवन्त्ययोः—पौष्यञ्जि तथा आवन्त्य के; च—तथा; अपि—निस्सन्देह; तान्—उनको; च—भी; प्राच्यान्—पूर्व के रहने वाले; प्रचक्षते—कहलाते हैं।

पौष्यञ्जि तथा आवन्त्य के ५०० शिष्य सामवेद के उदीच्य गायक के नाम से प्रसिद्ध हुए और बाद में उनमें से कुछ तो प्राच्य गायक भी कहलाने लगे।

लौगाक्षिर्माङ्गलिः कुल्यः कुशीदः कुक्षिरेव च ।
पौष्यञ्जिसिष्या जगृहुः संहितास्ते शतं शतम् ॥ ७९ ॥

शब्दार्थ

लौगाक्षिः माङ्गलिः कुल्यः—लौगाक्षि, मांगलि तथा कुल्य; कुशीदः कुक्षिः—कुशीद तथा कुक्षि; एव—निस्सन्देह; च—भी; पौष्यञ्जि-शिष्याः—पौष्यञ्जि के शिष्यों ने; जगृहुः—ले लिया; संहिताः—संग्रह; ते—वे; शतम् शतम्—प्रत्येक ने एक-एक सौ।

पौष्यञ्जि के पाँच अन्य शिष्यों, लौगाक्षि, मांगलि, कुल्य, कुशीद तथा कुक्षि में से हर एक को एक-एक सौ संहिताएँ मिलीं।

कृतो हिरण्यनाभस्य चतुर्विंशति संहिताः ।
शिष्य ऊचे स्वशिष्येभ्यः शेषा आवन्त्य आत्मवान् ॥ ८० ॥

शब्दार्थ

कृतः—कृत; हिरण्यनाभस्य—हिरण्यनाभ के; चतुः-विंशति—चौबीस; संहिताः—संग्रह; शिष्यः—शिष्य; ऊचे—बोला; स्व-शिष्येभ्यः—अपने शिष्यों से; शेषाः—शेष (संग्रह); आवन्त्यः—आवन्त्य; आत्म-वान्—आत्मसंयमी।

हिरण्यनाभ के शिष्य कृत ने अपने शिष्यों से चौबीस संहिताएँ कहीं और शेष संहिताएँ स्वरूपसिद्ध मुनि आवन्त्य द्वारा आगे चलाई गईं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कंध के अन्तर्गत ''महाराज परीक्षित का निधन'' नामक छठे अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।